जनसत्ता

नागरिकता का सवाल

असम में राष्ट्रीय नागरिकता पंजीकरण यानी एनआरसी के काम को रोकने संबंधी केंद्र सरकार की अपील को सर्वोच्च न्यायालय ने ठुकरा दिया है। उसने स्पष्ट कर दिया है कि किसी भी हाल में एनआरसी की तिथि जुलाई से आगे नहीं बढ़ाई जाएगी। आम चुनावों के मद्देनजर केंद्रीय गृहमंत्रालय ने मांग की थी कि चूंकि चुनाव के दौरान केंद्रीय सशस्त्र पुलिस बल व्यस्त रहेगा, इसलिए एनआरसी का काम दो हफ्ते के लिए टाल दिया जाए। पर सर्वोच्च न्यायालय ने तल्ख टिप्पणी की कि केंद्र सरकार इस काम को बर्बाद करना चाहती है। दरअसल, एनआरसी को लेकर असम में शुरू से ही विवाद चल रहा है। सरकार का मानना है कि असम में बड़ी तादाद में विदेशी घुसपैठिए आकर बस चुके हैं। उनकी पहचान करना जरूरी है। घुसपैठ कर आए लोगों के जरिए आतंकवादी संगठन देश की सुरक्षा व्यवस्था को चुनौती देते हैं। इसलिए पिछली जुलाई में असम में राष्ट्रीय नागरिकता पंजीकरण की प्रक्रिया शुरू की गई थी। इसके तहत जो पहली सूची आई, उसमें करीब चालीस लाख लोगों के नाम नहीं थे। उनमें से साढ़े सैंतीस लाख लोगों के नाम पूरी तरह खारिज किए जा चुके हैं, जबकि ढाई लाख लोगों के नाम विचाराधीन सूची में हैं। इसे लेकर वहां लगातार विरोध प्रदर्शन हो रहे हैं।

असल में एनआरसी के लिए जो पहली सूची जारी की गई थी, उसमें उन लोगों के नाम छांट दिए गए थे, जिनके पास उचित नागरिकता प्रमाण-पत्र नहीं थे। मगर बहुत सारे लोगों का कहना है कि वे अपनी नागरिकता संबंधी प्रमाण-पत्र बनवाने को लेकर सजग नहीं थे, जबकि वे पीढ़ियों से वहां रह रहे हैं। फिर सरकार के पास खुद ऐसा कोई पुख्ता आंकड़ा नहीं है, जिससे बाहर से आकर बसे लोगों की वास्तविक संख्या का पता चलता हो। अलग-अलग बयानों में वहां की सरकार विरोधाभासी आंकड़े बता चुकी है। दरअसल, यह इसलिए हुआ कि सरकार ने पहले बाहर से आए लोगों के बारे में जानकारी नहीं जुटाई, उसने सीधा पंजीकरण का काम शुरू कर दिया। ऐसे में बहुत सारे ऐसे लोगों के नाम सूची से बाहर हो गए, जिनके पास किसी वजह से कोई प्रमाण-पत्र नहीं था। ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोग आमतौर पर जन्म और मृत्यु प्रमाण-पत्र जैसे कागजात रखने, अपनी पहचान संबंधी दस्तावेज संजोने के मामले में लापरवाह देखे जाते हैं। कुछ गड़बड़ियां ग्रामीण प्रशासन के स्तर पर भी होती हैं, जिसके चलते बहुत सारे लोगों के पास उनकी नागरिकता प्रमाणित करने वाले कागजात नहीं होते। इसलिए राष्ट्रीय नागरिकता पंजीकरण में ऐसे लोगों की पहचान संदिग्ध हो गई है।

ऐसे में जहां इतनी बड़ी संख्या में लोगों के अपनी जगह-जमीन से उजड़ने और किसी पराए देश में जाकर शरण पाने की यातना झेलने का संकट हो, उस काम में देरी करना उचित नहीं जान पड़ता। इस काम को जितनी जल्दी और जितनी पारदर्शिता से हो सके, निपटाने की कोशिश होनी चाहिए। यह सही है कि चुनावों में सशस्त्र बलों की जिम्मेदारी बढ़ जाती है, उनकी संख्या भी सीमित है, इसलिए दो कामों में उनकी तैनाती परेशानी पैदा कर सकती है। पर चुनाव के नाम पर नागरिकता की पहचान को टालना ठीक नहीं है। चुनाव प्रक्रिया को संपन्न कराने के लिए दूसरे सुरक्षा बलों की भी मदद ली जा सकती है, बाहर से सेना की टुकड़ियां बुलाई जा सकती हैं। ऐसा अनेक बार होता भी है। इसलिए एनआरसी के काम को रोकने पर सर्वोच्च न्यायालय की आपत्ति उचित कही जा सकती है।

प्रत्यर्पण की उम्मीद

बैंकों का पैसा डकार कर विदेश भागने वाले आर्थिक अपराधियों को वापस लाने की दिशा में सरकार और जांच एजेंसियों के प्रयासों के नतीजे अब सामने आने लगे हैं। इस दिशा में पहली सफलता तो यही है कि विजय माल्या को ब्रिटेन से भारत लाने का रास्ता खुला। लंबी न्यायिक प्रक्रिया और कानूनी पेचीदगियों की वजह से भले इस प्रक्रिया में और देर लगे, लेकिन माल्या के प्रत्यर्पण को हरी झंडी देकर ब्रिटेन की सरकार ने एक रास्ता तो बनाया। लंदन की मेट्रोपॉलिटिन अदालत में प्रत्यर्पण संबंधी मुकदमा हारने के बाद माल्या को भारत प्रत्यर्पित करने के आदेश पर ब्रिटेन के गृहमंत्री ने दस्तखत कर दिए। इसी से भारत को उम्मीद बंधी है कि अब माल्या सहित दूसरे भगोड़ों को जल्दी भारत लाना संभव हो सकेगा। तीन मार्च, 2016 को माल्या के भारत से भागने के एक साल बाद फरवरी, 2017 में भारत ने ब्रिटेन से उसके प्रत्यर्पण का अनुरोध किया था। माल्या के मामले में अब तक भारत को जो कुछ हासिल हुआ है उसे एक बड़ी कूटनीतिक जीत इसलिए भी माना जा रहा है कि दुनिया में ब्रिटेन के प्रत्यर्पण कानून सबसे जटिल हैं और इसी का फायदा उठा कर अपराधी वहां शरण लेते हैं।

माल्या के प्रत्यर्पण को ब्रिटिश सरकार ने हरी झंडी भले दे दी हो, लेकिन उसकी भारत वापसी इतनी आसान भी नहीं लग रही। माल्या के पास बचाव के कानूनी रास्ते हैं जो उसके प्रत्यर्पण में बाधा बन सकते हैं। पिछले साल दिसंबर में लंदन की अदालत ने जब माल्या के खिलाफ फैसला सुनाया था और उसके प्रत्यर्पण का आदेश दिया था तब माल्या ने उस फैसले को उच्च अदालत में चुनौती नहीं दी थी। उसे उम्मीद थी कि ब्रिटिश सरकार उसका साथ देगी। लेकिन अब माल्या के पास गृहमंत्री के प्रत्यर्पण के आदेश के खिलाफ अपील करने का अधिकार है और इसका वह पूरा फायदा लेगा। इसके खिलाफ वह ब्रिटेन के हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट तक जा सकता है और चाहे जितना जल्द इस प्रक्रिया को पूरा किया जाए, इसमें कम से कम छह महीने तो लग ही सकते हैं। ऐसे में आम चुनाव से पहले उसे भारत लाने की सरकार की कोशिशों को झटका लग सकता है।

माल्या जिस तरह भारत से भागा और उसके प्रत्यर्पण के मामले में सरकार ने शुरू में जैसी शिथिलता दिखाई, उससे भी कई सवाल खड़े होते हैं। अगर भारत की खुफिया और जांच एजेंसियां जरा भी सतर्कता दिखातीं तो माल्या के लिए देश छोड़ना आसान नहीं होता। पिछले साल लंदन की अदालत के बाहर माल्या ने कहा था कि आने से पहले वह वित्तमंत्री से मिला था, हालांकि वित्तमंत्री ने बाद में इसका खंडन किया। माल्या के भागने से लेकर उसके प्रत्यर्पण अनुरोध में भारत सरकार ने एक साल लगा दिया। सरकार को शायद यह उम्मीद रही होगी कि माल्या खुद आ जाएगा और बैंकों का पैसा चुका देगा! माल्या जैसे तमाम बड़े घोटालेबाज भारत के लचर तंत्र का फायदा उठा कर ही देश से भागे हैं। पीएनबी घोटाले को अंजाम देने वाले मेहुल चौकसी ने भाग कर एंटीगुआ की नागरिकता ले ली और भारत को ठेंगा दिखा दिया। अब भारत सरकार के पास हाथ-पैर मारने के अलावा कुछ नहीं बचा है। लेकिन जिस तरह से जांच एजेंसियों और प्रवर्तन निदेशालय ने माल्या, नीरव मोदी जैसे भगोड़ों के खिलाफ अब सख्ती दिखानी शुरू की है, उससे यह संदेश तो गया है कि अगर सत्ता तंत्र चाहे और ईमानदारी से काम करे तो ऐसे अपराधियों पर लगाम लगा पाना कोई मुश्किल काम नहीं है। बस इच्छाशक्ति की जरूरत है।

कल्पमेधा

अगर एक देश को भ्रष्टाचार मुक्त होना है तो मैं यह महसूस करता हूं कि हमारे समाज में तीन ऐसे लोग हैं जो ऐसा कर सकते हैं और वे हैं पिता, माता और शिक्षक।
-एपीजे अब्दुल कलाम

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की समस्या

शम्स तमन्ना

सरकारी स्कूलों की खराब होती गुणवत्ता के लिए शिक्षा विभाग के अधिकारियों की उदासीनता और लापरवाही जिम्मेदार है। अधिकारी और शिक्षक सरकारी खजाने से वेतन और अन्य सुविधाएं तो प्राप्त करते हैं, लेकिन अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों में पढ़ाते हैं। जरूरत है 2015 में दिए गए इलाहाबाद हाईकोर्ट के उस फैसले को सख्ती से लागू करने की, जिसमें कोर्ट ने सभी नौकरशाहों और सरकारी कर्मचारियों के लिए उनके बच्चों को सरकारी स्कूलों में पढ़वाना अनिवार्य किया था।

इस बार 2019-20 के बजट में शिक्षा के क्षेत्र में करीब चौरानवे हजार करोड़ रुपए आबंटित किए गए हैं। पिछले वित्त वर्ष की तुलना में यह आबंटित रकम दस फीसद अधिक है। इसमें उच्च शिक्षा के लिए 37,461.01 करोड़ रुपए और स्कूली शिक्षा के लिए 56,386.63 करोड़ रुपए रखे गए हैं। केवल राष्ट्रीय शिक्षा मिशन में 38573 करोड़ रुपए के बजट का प्रावधान किया गया है। इन राशियों में जहां कक्षाओं का डिजिटलीकरण करना शामिल है, वहीं शिक्षकों के पढ़ाने का स्तर सुधारना और उन्हें प्रशिक्षण देना भी शामिल है। विशेषज्ञों के अनुसार इस वित्त वर्ष में शिक्षा के बजट में 3.69 फीसद का इजाफा हुआ है।

केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा अपने-अपने बजट में स्कूली शिक्षा पर एक बड़ी राशि खर्च करने के बावजूद देश के सरकारी स्कूलों की हालत किसी से छिपी नहीं है। विशेष रूप से, शिक्षकों के पढ़ाने का स्तर इस पूरी शिक्षा व्यवस्था की सबसे कमजोर कड़ी है। देश के सबसे बड़े हिंदी भाषी राज्य उत्तर प्रदेश और बिहार के सरकारी स्कूलों में बड़ी संख्या में अप्रशिक्षित शिक्षकों की भर्ती ने इस समस्या को और गंभीर बना दिया है। परिणामस्वरूप अभिभावक अब अपने बच्चों को सरकारी स्कूल की बजाय निजी स्कूल में पढ़ाने को प्राथमिकता दे रहे हैं। कई गैर सरकारी संस्थाओं ने अपनी रिपोर्ट में अभिभावकों के इस रुझान को सामने लाकर सरकारी स्कूलों की हालत और शिक्षकों के पढ़ाने के स्तर जैसी खामियों को उजागर किया है।

आंकड़े बताते हैं कि बिहार और उत्तर प्रदेश में अभिभावकों का सरकारी स्कूलों से मोहभंग हो रहा है। 2015-16 की तुलना में 2016-17 में इन दोनों राज्यों के सरकारी स्कूलों में नामांकित बच्चों की संख्या में करीब 24.79 लाख की कमी दर्ज की गई। अकेले बिहार में ही पंद्रह लाख बच्चे कम नामांकित हुए। वर्ष 2015-16 में जहां बिहार के सरकारी स्कूलों में दो करोड़ पैंतीस लाख बच्चों का नामांकन हुआ था, वहीं 2016-17 में यह आंकड़ा घट कर दो करोड़ उन्नीस लाख रह गया। इसी अवधि के दौरान उत्तर प्रदेश में यह आंकड़ा एक करोड़ बासठ लाख की तुलना में घट कर एक करोड़ बावन लाख रह गया। हालांकि केरल, तमिलनाडु, तेलंगाना और कर्नाटक के सरकारी स्कूलों में भी बच्चों के नामांकन में मामूली गिरावट आई है। कुल मिलाकर देश भर के सरकारी स्कूलों में छप्पन लाख से ज्यादा बच्चों के नामांकन में कमी आई है और इन आंकड़ों में अकेले बिहार और उत्तर प्रदेश का हिस्सा तैंतालीस फीसद है।

सरकारी स्कूलों में नामांकन में आई कमी का सीधा-सा मतलब है कि अभिभावक अब अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए सरकारी स्कूलों से ज्यादा निजी स्कूलों को तरजीह दे रहे हैं। दरअसल, सरकारी स्कूलों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में आ रही लगातार गिरावट से अभिभावकों को यह एहसास होने लगा है कि यहां उनके बच्चों का भविष्य उज्ज्वल नहीं है। गलाकाट प्रतिस्पर्धा के इस दौर में जहां निजी नौकरियां ही एकमात्र विकल्प हैं, ऐसे में यदि उनके बच्चों को आगे रहना है तो सरकारी नहीं बल्कि पब्लिक स्कूल ही उचित होगा। उन्हें इस बात का यकीन है कि प्राइवेट कंपनियों की कार्य-संस्कृति और उस वातावरण को तैयार करने की क्षमता पब्लिक स्कूलों में होती है। यह कार्य-संस्कृति वास्तव में अंग्रेजी भाषा से जुड़ी है। अभिभावकों को लगता है कि सरकारी स्कूलों में अंग्रेजी केवल एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है, वह भी नाममात्र के लिए, जबकि पब्लिक स्कूलों में हिंदी विषय को छोड़ कर अन्य सभी विषय न केवल अंग्रेजी में पढ़ाए जाते हैं बल्कि स्कूल परिसर में छात्रों को अंग्रेजी भाषा में ही बात करने के लिए प्रेरित भी किया जाता है। अंग्रेजी भाषा से स्कूली पढ़ाई करने वाले बच्चों को भविष्य में मेडिकल, इंजीनियरिंग, कानून, प्रबंधन और मीडिया जैसे पेशेवर क्षेत्रों की पढ़ाई कराने वाले देश के उच्च शिक्षण संस्थाओं में आसानी से प्रवेश मिल सकता है। जबकि सरकारी स्कूलों में हिंदी माध्यम से पढ़ने वाले बच्चों को इन्हीं क्षेत्रों में प्रवेश पाना मुश्किल हो जाता है।

बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में पब्लिक स्कूलों के प्रति अभिभावकों के बढ़ते रुझानों के पीछे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार भी एक बड़ा कारण है। पिछले कुछ दशकों में इन दोनों राज्यों में प्रति व्यक्ति आय में काफी सुधार हुआ है। केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय की एक रिपोर्ट के अनुसार 2004-05 में बिहार में प्रति व्यक्ति आय 8560 रुपए थी जो बढ़ कर 2014-15 में 16652 रुपए हो गई। उत्तर प्रदेश में इसी अवधि के दौरान यह 14580 रुपए से बढ़ कर 22892 रुपए प्रति व्यक्ति तक पहुंच गई। घर की अच्छी आमदनी ने बच्चों की गुणवत्तापूर्ण पढ़ाई के प्रति अभिभावकों के नजरिये को भी बदला है।

सरकारी स्कूलों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में लगातार गिरावट आने का बड़ा कारण शिक्षकों की कमी भी है। देशभर में सरकारी स्कूलों में तकरीबन साठ लाख शिक्षकों के पद स्वीकृत हैं, लेकिन अलग-अलग स्तरों पर जारी किए गए सरकारी आंकड़ों और कई संस्थाओं के शोध-सर्वे में यह बात सामने आई है कि इस वक्त देशभर में सरकारी स्कूलों में शिक्षकों के लगभग दस लाख पद खाली हैं। इनमें अकेले नौ लाख पद प्राथमिक स्कूलों में खाली हैं। प्राथमिक स्तर पर सबसे ज्यादा दो लाख चौबीस हजार से ज्यादा पद उत्तर प्रदेश में खाली हैं। इसी तरह बिहार में दो लाख से ज्यादा प्राथमिक स्कूल शिक्षकों के पद खाली हैं। पश्चिम बंगाल और झारखंड के प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों में भी शिक्षकों के औसतन एक तिहाई पद खाली हैं। इसके बाद मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ का नंबर आता है, जहां स्थिति कुछ बेहतर है लेकिन इसे भी संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। इसके विपरीत गोवा, ओड़ीशा और सिक्किम में प्राथमिक स्कूलों में शिक्षकों का कोई पद खाली नहीं है। सिक्किम देश का एकमात्र ऐसा राज्य है जहां प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों पर शिक्षकों के शत-फीसद पद भरे हुए हैं। जबकि माध्यमिक स्तर पर देश में शिक्षकों की सबसे ज्यादा कमी झारखंड में है। बिहार में भी माध्यमिक स्तर पर शिक्षकों के स्वीकृत सत्रह हजार से अधिक पद खाली हैं। देश के सबसे अशांत राज्य जम्मू-कश्मीर में भी इक्कीस हजार से अधिक माध्यमिक स्तर पर शिक्षकों की जगह खाली है।

समस्या केवल शिक्षकों की कमी की नहीं, प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी की भी है। सेंटर फॉर बजट एंड गवर्नेंस अकाउंटबिलिटी (सीबीजीए) और चाइल्ड राइट एंड यू (क्राई) के एक शोध के अनुसार योग्य शिक्षकों की कमी देश के लगभग सभी राज्यों में है। समूचे देश में शिक्षक-छात्र अनुपात, शिक्षकों की संख्या और उनके प्रशिक्षण के मामले में बिहार की स्थिति सबसे खराब है, जहां खाली पड़े पदों को भरने के लिए अतिथि शिक्षकों के नाम पर बड़ी संख्या में अप्रशिक्षित शिक्षकों की भर्ती कर दी गई। बिहार के प्राथमिक स्कूलों में अड़तीस फीसद से ज्यादा अध्यापक प्रशिक्षित नहीं हैं, जबकि माध्यमिक स्तर पर ऐसे शिक्षकों की संख्या पैंतीस फीसद है। दूसरे स्थान पर पश्चिम बंगाल आता है जहां प्राथमिक स्तर पर 31.4 और माध्यमिक स्तर पर 23.9 फीसद शिक्षक प्रशिक्षित नहीं हैं।

सरकारी स्कूलों की खराब होती गुणवत्ता के लिए शिक्षा विभाग के अधिकारियों की उदासीनता और लापरवाही जिम्मेदार है। अधिकारी और शिक्षक सरकारी खजाने से वेतन और अन्य सुविधाएं तो प्राप्त करते हैं, लेकिन अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों में पढ़ाते हैं। जरूरत है 2015 में दिए गए इलाहाबाद हाईकोर्ट के उस फैसले को सख्ती से लागू करने की, जिसमें कोर्ट ने सभी नौकरशाहों और सरकारी कर्मचारियों के लिए उनके बच्चों को सरकारी स्कूलों में पढ़वाना अनिवार्य किया था। जब सरकारी अफसरों और कर्मचारियों के बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ेंगे तभी इन स्कूलों की हालत सुधर पाएगी।

दर्शन की भीड़

रमेश चंद मीणा

दुनिया को समझने के लिए एक जीवन बहुत छोटा होता है। कुछ इसे समझने, समझाने और निपटने का दावा करते हुए नेतृत्व कर लेते हैं। कुछ शासक बन जाते हैं, तो बाकी बचे शासित होने के लिए रह जाते हैं। दुनिया अपनी रफ्तार से चलती रहती है। औरों की तो छोड़िए पति-पत्नी जिंदगीभर दो छोर पर बने रहते हुए जी लेते हैं। वे एक-दूसरे को बदलने की उम्मीद में लगे रहते हैं।

दुनिया रहस्यमय है, इसे सुलझाने वाला उलझता ही चला जाता है। जीवन बेहद उलझा हुआ है, डराने और भयभीत कर डालने वाला है। यही कारण है कि जीवन को सहज बनाने के लिए भीड़ मंदिरों के चक्कर काटती देखी जा सकती है। पूरा एक सप्ताह पत्नी के साथ इस भीड़ का हिस्सा बन कर ऐसा ही लगा। सिकंदराबाद काम से जाना हुआ तो पत्नी को अच्छा अवसर मिल गया, बोलीं-'क्यों न तिरुपति बालाजी के दर्शन कर लिए जाएं!'

मरता क्या न करता! सो योजना में मंदिर भ्रमण शामिल कर लिया गया। हैदरबाद बिड़ला मंदिर से शुरुआत हुई। हर प्रदेश की राजधानी में बिड़ला मंदिर स्थापित है। सो हैदराबाद कैसे बच सकता था! पत्नी ने लोगों का बहाना बनाया कहा-'यहां लोग कह रहे हैं बिड़ला मंदिर से बहुत अच्छा दृश्य बनता है, क्यों न देख लिया जाए?' जबकि बिड़ला मंदिर जयपुर में देखा जा चुका है, वैसा ही है, इसमें देखना क्या है? सवाल अधर में लटका रह जाता है और मंदिर यात्रा की शुरुआत होती है, हैदराबाद के बिड़ला से।

बिड़ला मंदिर जयपुर की ही तरह हैदराबाद में भी पहाड़ी पर स्थित है। फर्क इतना है कि यहां भीड़ का अच्छा खासा जमावड़ा था। भीड़ रुक-रुक कर आगे बढ़ती है। मंदिर के चारों तरफ दूर-दूर तक जहां तक नजर जा सकती है, हैदराबाद का फैलाव अंधेरी रात में रहस्यमय दिखाई देता है। रात की जगमग रोशनी में नहाया हैदराबाद बेशक बड़ा खूबसूरत लगता है। मैं पत्नी के साथ बिजली की रोशनी में शहर देख कर चमत्कृत होता हूं और अगले पायदान पर तिरुपति के लिए बढ़ जाता हूं। 'दर्शन दुर्लभ हैं बालाजी के।' बार-बार सुना जाता है। सो पहले से ही सारी व्यवस्था चाकचैबंद करके उस जगह सुबह ही पहुंच जाते हैं, जहां हम खड़े हो जाते हैं लाइन वहीं से शुरू होती है की भावना के साथ। हर दर्शनार्थी के हाथ में वीआइपी टिकट हैं।

दुनिया मेरे आगे

पहले पायदान पर ही यह कहते हुए रोका गया कि बिना धोती अंदर नहीं जा सकते हैं। सो तीन सौ रुपए की धोती खरीदी जाती है। आगे बढ़े तो आठ-दस कंप्यूटर पर आधार कार्ड चैक किया जाता है। फिर दस मिनट के लिए भीड़ ठहर जाती है। अब सभी दर्शनार्थियों को न केवल मैटल डिटेक्टर से अपित पूरी तरह चैकिंग से गुजरना पड़ता है। आगे-पीछे सांप की तरह बल खाती, अजगर की तरह सरकती लंबी भीड़ है जो कभी ठहरती है, ठिठकती है तो कभी दौड़ कर बैठती है। एक के मुंह से निकला नहीं 'गोविंदा' कि फिर आगे से पीछे तक एक ही आवाज गूंजने लगती है।

भीड़ कैसे पैदा की जाती है, कैसे बनती है, इसकी लंबी परंपरा है, आस्था के स्थानों की। बावजूद विज्ञान और शिक्षा के आज भी बरकरार है। धर्म में प्रबल आस्था विज्ञान को पराजित किए दे रही है। सारे वैज्ञानिक आविष्कार लैपटॉप, ऑन लाइन पेमेंट, बुकिंग, अनुशासन, भव्य आर्किटेक्ट, ऐश्वर्य का घटाटोप, तकनीकी का पूरा उपयोग करना आदि ऐसे उपक्रम रहे हैं जिनसे भीड़ स्वतः ही आश्चर्य में डूब जाती है, भक्त चमत्कृत हो उठता है। दर्शनार्थियों के मन में भावना का प्रबल उफान मारने लगता है और बालाजी की शक्ति को सारा श्रेय दे डालते हैं। देखो कितनी शक्ति है! सबकुछ इनके बल पर ही संपन्न हो रहा है। लोग किस तरह से व्यवस्थित, सुनियोजित और अनुशासनबद्ध हैं!! घोर आश्चर्य और आस्था में नत सिर और मन श्रद्धा के अथाह सागर में डूब जाता है। कौन मूर्ख होगा जो सवाल उठाएगा? पत्नी इस निगाह से देखती है जैसे कह रही हो-'देखो बालाजी का प्रताप! कितना धन? कितना सोना? और कितने लोग दान किये जा रहे हैं? यूं ही नहीं है यह सब?'

कार्यकर्ता नुमा भक्त डंडा लिए दो सेकंड में आगे धक्का मार देते हैं-'आगे बढ़ो, आगे बढ़ो।' लोग एक झलक पाकर खुश हो लेते हैं। भीड़ खुश है, समंदर की लहर की तरह स्वतः ही बढ़ रही है, कई किलोमीटर से आ रही है। और वे जो तिरुपति स्टेशन से ही पैदल चलकर आ रहे हैं? वाह क्या आस्था है? भक्तों में कितनी श्रद्धा है? यही तो भीड़ का मनोविज्ञान है। यही भीड़ लोकतंत्र का भी बेड़ा गर्क किए दे रही है और वही भीड़ यहां है। जनता भोली, भक्त भोले और जब भक्त भीड़ में होता है तब वह अपने को बली समझता है। यह भारत देश की सामाजिकता और पारंपरिकता रही है जो अब राजनीतिक सच्चाई भी हो चली है।

भ्रष्टाचार का रोग

किसी भी समाज में भ्रष्टाचार उस दीमक की तरह है जो भीतर ही भीतर उसकी जड़ों को खोखला कर देती है। अगर जड़ें ही खोखली हो जाएं तो समाज किसके सहारे खड़ा होगा! हमारे देश में भी हर जगह यह दीमक लग चुकी है। पुलिस, प्रशासन, राजनीति कुछ भी इससे अछूता नहीं है। सरकारी विभागों में मृत्यु प्रमाण पत्र बनवाने तक के लिए रिश्वत देनी पड़ती है तो सार्वजनिक हित के लिए बनने वाली योजनाओं पर भ्रष्ट नेताओं और अधिकारियों की गिद्ध दृष्टि टिकी होती है। घोटाले अब करोड़ों और अरबों के होने लगे हैं। बोफर्स से शुरू हुई कहानी टू-जी स्पैक्ट्रम तक पहुंच चुकी है। जनता की गाढ़ी कमाई का जो पैसा देश के विकास पर खर्च होना चाहिए वह नेताओं और अधिकारियों के लॉकरों में पहुंच जाता है।

भ्रष्टाचार के प्रति समाज का नजरिया तक बदल चुका है, किसी हद तक हम उसे स्वीकार भी कर चुके हैं। बहुत-से उदाहरणों में गड़बड़ियों को हम यह कह कर टाल देते हैं कि इतना तो चलता ही है! हम अपनी सहूलियत के हिसाब से भ्रष्टाचार के मानक तय कर लेते हैं और अपने आराम के लिए इसे बढ़ावा भी देते हैं। बात जब बड़े स्तर की होती है, तो बड़ी योजनाओं में शामिल लोग अपने स्तर पर यही करते हैं और मौकापरस्त बन जाते हैं।

हाल ही में विश्व बैंक की एक रिपोर्ट में कहा गया कि भारत में सालाना 6,350 करोड़ रुपए रिश्वत का लेन-देन होता है। यह आंकड़ा 2005 से कम है। तब सालाना 20,500 करोड़ रुपए की रिश्वत का लेन-देन होता था। रिपोर्ट के मुताबिक मध्य भारत के राज्यों के मुकाबले दक्षिणी राज्यों में भ्रष्टाचार ज्यादा है। रिश्वत देने में सबसे आगे 77 प्रतिशत लोगों के आंकड़ों के साथ कर्नाटक है। दूसरे स्थान पर आंध्र प्रदेश 74 प्रतिशत और तीसरे नंबर पर तमिलनाडु 68 प्रतिशत है। वहीं हिमाचल प्रदेश सबसे कम भ्रष्टाचार वाला राज्य है जहां केवल तीन फीसद लोगों को रिश्वत देनी पड़ी।

ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल की ओर से जारी किए गए भ्रष्टाचार संबंधी सूचकांक में भारत की रैंकिंग गिरी है। पिछले साल के मुकाबले तीन स्थान खिसक कर भारत 79वें नंबर पर आ गया है। अब हमारे समाज और न्याय व्यवस्था को कुछ बड़े उदाहरण पेश करने होंगे। लोगों के भीतर एक डर भी बैठाना होगा, भ्रष्टाचार के परिणाम का। हालांकि कुछ मामलों में प्रशासन और न्याय व्यवस्था ने मिसालें भी पेश की हैं लेकिन काम सिर्फ मिसाल से नहीं चलने वाला। बुराई की एक-एक शाखा को ढूंढ़-ढूंढ़ कर खत्म करना होगा।

● *भरत यादव, बीएचयू, वाराणसी*

घातक तनाव

पिछले दिनों भारत-पाक सीमा (बाड़मेर) पर तैनात सीमा सुरक्षा बल के एक जवान ने छुट्टी न मिलने के चलते अवसाद की गिरफ्त में आकर अपने दो साथियों को गोली मार कर जख्मी कर दिया। जवानों में बढ़ता अवसाद और इस तरह की सनसनीखेज घटना कई तरह के सवालों को जन्म देती है कि क्या वाकई जवानों को समय पर छुट्टी नहीं मिलती? उन्हें पौष्टिक आहार नहीं मिलता? उनके रहने के लिए अच्छे इंतजाम नहीं हैं? और आखिर में मूल प्रश्न यह कि क्या उन पर मानसिक व शारीरिक दबाव इतना अधिक होता है कि उसके चलते वे ऐसे गलत कदम उठाने को मजबूर होते हैं? इन सब प्रश्नों का सही उत्तर यही हो सकता है कि सरकार और उच्च पदस्थ अधिकारी सेना के जवानों पर विशेष ध्यान दें और उन्हें समय-समय पर वाजिब अवकाश भी दें ताकि वे कुछ समय अपने परिवार और बच्चों को भी दे सकें।

● *प्रदीप कुमार सारण, कृष्ण नगर, बीकानेर*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

बढ़ता अविश्वास

जब आंध्र प्रदेश में चंद्रबाबू नाडयू सरकार और पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी सरकार ने सीबीआइ के लिए अपने राज्य में 'नो इंट्री' यानी प्रवेश निषेध का ऐलान किया तो यह डर जताया जा रहा था कि ऐसे में केंद्रीय एजेंसियों का काम कर पाना मुश्किल हो जाएगा। यह डर कोलकाता में तब सही साबित हुआ जब सारदा चिटफंड घोटाले की फाइलें जब्त करने कोलकाता पुलिस आयुक्त के घर पहुंची सीबीआइ टीम और स्थानीय पुलिस के बीच टकराव हो गया। हद तो तब हो गई जब सीबीआइ की टीम को कोलकाता पुलिस ने हिरासत में ले लिया। बंगाल पुलिस द्वारा सीबीआइ की टीम को गिरफ्तार किए जाने के बाद यह राष्ट्रीय स्तर पर बहस का विषय बन गया।

संविधान के जानकार इसे बंगाल पुलिस और सीबीआइ विवाद के इतर केंद्र-राज्य विवाद के रूप में देखने लगे। हालांकि ममता बनर्जी के धरने पर बैठने के बाद इसे केंद्र-राज्य विवाद के रूप में देखना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है। हाल के घटनाक्रम से पता चलता है कि केंद्र सरकार हो या फिर राज्य सरकार, देश के संवैधानिक एवं सरकारी निकायों के दुरुपयोग के आरोप दोनों पर लग रहे हैं। यही कारण है कि आम जनमानस में देश के संवैधानिक और सरकारी निकायों के प्रति अविश्वास बढ़ता जा रहा है। निहित सियासी स्वार्थों से ऊपर उठ कर आम जनमानस में इस विश्वास को फिर से कायम करना आज बहुत जरूरी है।

● *कुंदन कुमार 'क्रांति', वाराणसी*

हादसों की वजह

राजधानी दिल्ली में सड़क हादसों में मरने वालों की संख्या 6.5 फीसद बढ़ गई है जो चिंताजनक है। देश में वाहनों का जाल फैलता ही जा रहा है। सड़क हादसों में मरने वालों में सबसे ज्यादा साइकिल सवार और पैदल चलने वाले हैं। ज्यादातर हादसे रात नौ से तीन बजे तक होते हैं। यातायात संबंधी नियम-कानून होने के बावजूद तेज गति से या शराब पीकर वाहन चलाना, हेलमेट न पहनना आम है। आज भी सड़कों पर स्कूली बच्चे बाइक भगाते देखे जा सकते हैं। इसे उनकी जिद कहें या परिजनों की लापरवाही! हमारी सड़कें पैदल चलने वालों की लिए महफूज नहीं हैं। पुलिस और सरकार को सख्ती से यातायात नियमों को लागू करना होगा तभी स्थिति में सुधार हो सकता है।

● *आशीष, राम लाल आनंद कॉलेज, दिल्ली*